मीणा आदिवासी : समाज और संस्कृति

केदार प्रसाद मीणा

मीणा आदिवासी देश के अग्रणी आदिवासी है। अग्रणी इस अर्थ में कि ये तथाकथित मुख्यधारा के समाज में नमक और पानी की तरह घुल मिल गये है। मध्य भारत के आदिवासियों में सबसे अधिक शिक्षित और संपन्न आदिवासी मीणा ही है। उच्च राजकीय सेवाओं में कार्यरत आदिवासियों का बड़ा हिस्सा मीणा आदिवासियों से ही आता है। विद्वान बताते है कि आदिवासियों की अपनी भिन्न सामाजिक विशेषताएं और सांस्कृतिक मूल्य रहे हैं जो अब लगातार खोते जा रहे हैं। कुछ दबाव में खो रहे हैं जिनको संबंधित आदिवासी मजबूरी में छोड़ रहे हैं और कुछ इच्छा से भी त्यागे जा रहे हैं। जिन्हें उन मूल्यों और विशेषताओं से जल्दी पिंड छुड़ाना है और अपनी पहचान पूरी तरह समाप्त कर लेनी है। ये वे आदिवासी समुदाय है जो अपनी इन भिन्न सामाजिक विशेषताओं और मूल्यों को बहुत हीन दृष्टि से देखते हैं। अपनी इन सामाजिक विशेषताओं और सांस्कृतिक मूल्यों से तुंरत पिंड छुड़ाना चाहने वालों में मीणा आदिवासी सबसे अग्रणी आदिवासी हैं।

मीणा आदिवासियों के इतिहास के प्रामाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। जो साक्ष्य उपलब्ध हैं उनका अध्ययन लगभग खुद मीणाओं ने ही करने की कोशिश की है लेकिन अच्छे पुरातत्वविदों ने- फादर हैरास जैसे एकाध को छोड़-पता नहीं क्यों खुद को इनसे दूर रखा है। शायद इसलिए भी कि वे मीणाओं के इतिहास को भी अन्य आदिवासियों के इतिहास की तरह सामने नहीं आने देना चाहते रहे होंगे। इसका परिणाम यह हुआ कि मीणा इतिहास कुछ तो साक्ष्यों में अटक गया और कुछ मिथकों में उलझ गया। इस अटकन और उलझन का सारा फायदा विरोधी शोषक शक्तियों को मिला। वे मीणाओं को बहकाते रहे। कभी बताया गया कि ये मनु की संतान है, कभी विष्णु की संतान बताया, कभी आर्य जाति बताया गया, कहीं देव संतान कहा गया, कभी ये राजवंशी और कई प्रकार के राजपूत बताये गये, कभी मुसलमान बनाये गये, कभी शक या हूण। मीणा इतिहास के अध्ययन के लिए मुनि मगन सागर के 'मीन पुराण' और कर्नल टॉड की पुस्तक 'एनल्स एंड एंटिक्यूटिज ऑफ राजस्थान' का ही बार-बार सहारा लिया जाता है। मुनि मगर सागर-जो खुद मीणा आदिवासी थे-ने श्रीमद्भागवत, अग्निपुराण, स्कंदपुराण, शिवपुराण व जैन विद्वानों के मतों का सहारा लेकर 'मीन', 'मीणा', 'मैना', 'मयणा' आदि शब्दों की कई प्रकार से व्याख्या करने की कोशिश की और मीणा जाति को विष्णु और मनु की संतान और एक आर्य जाति बताया। वे किसी ठोस और विश्वसनीय निर्णय पर नहीं पहुचे थे लेकिन आज जब सम्पूर्ण मीणा समुदाय हिन्दू बन चुका है तब मुनि मगन सागर का यह ग्रंथ ही उनका सबसे प्रिय 'इतिहास' है। कर्नल टॉड की पुस्तक से पता चलता है कि मीणा राजस्थान की बहुत बहादुर कौम रही है और इनकी कई छोटे-छोटे राज्यों में सत्ता रही है। सी.रिट्टर ने मीणाओं को शकों से निकली एक खतिहर जाति माना है जबकि मथुरालाल शर्मा इनको हूणों का वंशज स्वीकारते है।

एक दूसरी पुरातात्विक धारणा फादर हैरास की है। फादर हैरास ने आर्यो के आगमन से पूर्व की सभ्यताओं के ज्ञान के बल पर बताया कि मोहन जोदड़ो में प्राप्त गण चिन्ह 'मीन' वही गण चिन्ह है जो मीणाओं का 'मीन' है। सन् 1947 के आसपास फादर हैरास ने पूर्वी राजस्थान के कुछ क्षैत्रों का भ्रमण किया। पूर्वी राजस्थान के मीणाओं की सामाजिक मान्यताओं और संस्कृति का अध्ययन किया। उन्होंने गण चिह्न 'मीन' का सूक्ष्मता से अध्ययन कर बताया कि मीणा लोग आर्यों के आगमन के पहले के स्थानीय निवासी है। हालांकि मीणा आदिवासियों के इतिहास पर और अधिक कार्य की जरूरत है, लेकिन अब तक के अध

ययनकर्ता इस बात पर एक मत है कि मीणा लोग प्रोटो-द्रविड़ प्रजाति से संबंध रखते हैं। ये उन जातियों के वंशराज है जो सिंधु घाटी में निवास करते थे और जिनका गणचिन्ह 'मीन' था, जो बाद में आर्यों के द्वारा खदेड़े जाने पर अरावली की पहाड़ियों में आ बसे थे। इस 'मीन' गणचिन्ह का संबंध विष्णु या मनु से कतई नहीं है। यह एक भ्रामक धारणा है।

मीणा आदिवासी समाज भी अन्य आदिवासियों की तरह कई गोत्रों में बंटा हुआ रहा है। माना जाता है कि मीणाओं के गोत्रों की संख्या 5200 रही है। इनमें वे प्राचीन गोत्र भी शामिल हैं जिन गोत्रधारियों को अब के 'शुद्ध' मीणा लोग मीणा तक नहीं स्वीकारते हैं। एक गोत्र के लोग एक गांव में रहते। कई गोत्रों के गांवों से मिलकर बना बड़ा संगठन होता था, तड़। कुल तड़ बत्तीस थे। ये तड़ आजकल के उपखंड या ब्लॉक के समान रहा होगा। तड़ से बड़ी सर्वोच्च संस्था थी पाल। यह इनकी अपनी स्वायत्त सत्ता थी। इन गोत्रों और पालों का हिसाब जातीय इतिहासकार 'जागा' रखते थे। ये 'जागा' पहले राज दरबारों में काम किया करते थे। कालांतर में इनकी एक अल्पसंख्यक जाति ही बन गयी। हालांकि ये गाने-बजाने का नहीं, वंशावलिया बनाने व इतिहास को सुरक्षित रखने का काम करते थे लेकिन इन्हें चारणों-भाटों के बीच का एक वर्ग समझना चाहिए। क्योंकि वंशावलियों में ये रंक को राजा वर्णित करते थे। वंशावलियों को ये लय में ओजपूर्ण ढंग से गाया करते थे। जब यह वर्ग दरबारों से बाहर बढ़ने लगा और एक छोटी जाति में तब्दील हो गया, तब इन्होंने जीवन-यापन के लिए स्थानीय जातियों-जिनमें मीणा सबसे प्रमुख थे-के इतिहास और वंशावलियों का काम देखना शुरू किया। याद रहे, यह 9वीं-10वीं सदी का समय रहा है और इस समय तक मीणा आदिवासी राजपूतों के अधीन हो चुके थे। इन जागाओं को मीणा आदिवासियों के समय का ज्ञान नहीं के बराबर था। वे राजपूतों के समाज व वंशों के ज्ञाता रहे थे। इन्होंने सरल स्वभाव के मीणा लोगों का विश्वास अर्जित किया। उन्हें राजवंशों से 'कनेक्ट' कर राजपूतों के वंशज साबित करने की कोशिश की। उन्हें क्षत्रिय घोषित कर दिया। राजपूतों के हाथों पराजित मीणा आदिवासियों ने इस 'कनेक्शन' से एक छद्‌म आत्मविश्वास ग्रहण किया और इन 'जागाओं' को 'जागा' अर्थात् जगाने वाला कहा। संभव है उससे पहले ये 'जागा' किसी और नाम से या 'चारण'-'भाट' ही पुकारे जाते रहे हो।

मीणा आदिवासियों की बारह पालों का नामकरण जागाओं ने क्षत्रिय वंशों के आधार पर किया। मसलन, परमार, चौहान, गहलोत, चंदोल, सौलंकी, तंवर, कछावा, यादव, पड़िहार, निर्वाण, बडगूजर, गौड़। एक दूसरे उत्साही जागा ने मीणाओं को प्रसिद्ध ठिकानेदारों का वंशज घोषित किया। उसने बारह पालों की दूसरी 'लिस्ट' बनायी, मारदेश, हरीदेश, अजय नगर, बाढ़देश, मरूदेश, मेवपाल, मालदेश, व्रजदेश, हरीदेश, गंधदेश, हाड़ादेश, सुवालक देश। पहली लिस्ट वंशों के नाम के आधार पर थी और दूसरी स्थान विशेष के नाम पर। इसी तरह एक और उत्साही जागा ने इन पालों का निर्धारण किया है। उसने बारह की जगह तेरह पालों का नाम बताया। इस तीसरे पाल नाम निर्धारण के भेद अब तक विद्यमान है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें राजपूत वंशों और स्थानों को आधार नहीं बनाया गया है। ये तेरह पाल है, 1. जमींदार-चौकीदार, 2. पुराना बासी-नया बासी, 3. उजला-मैला, 4. पड़िहार मीणा, 5. रावत मीणा, 6. चमरिया मीणा, 7. भील मीणा, 8. असली या आदू मीणा, 9. ढ़ेढ़िया मीणा, 10. सूरतेवाल मीणा, 11. चौथिया मीणा, 12. दस्सा मीणा, 13. मेवासी मीणा। मीणा समाज का पालों के आधार पर किया गया यह वर्गीकरण उस दौर का है जब मीणा आदिवासी समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक नियम-कायदे व मूल्य सुरक्षित थे। उनमें जातिगत श्रेष्ठता का दंभ नहीं था, ऊंच-नीच नहीं थी। इन बारह-तेरह पालों और 5200 गोत्रों में इनके नाई, धोबी, खाती, चमार, तेली, लुहार, पुरोहित आदि भी शामिल रहे है। जागाओं ने मीणाओं की झूठी तुलना राजवंशों से की। येन-केन प्रकारेण उनको राजपूत या क्षत्रिय घोषित किया। इनमें हीन भावना और उच्च भावना के भाव पैदा किये। मीणाओं पर हिन्दू धर्म या ब्राहमण धर्म के मूल्य इन्होंने ही थोपे। नतीजा यह हुआ कि मीणा समाज की संगठित संस्कृति व ताने-बाने में फूट पड़ गयी, मतभेद पैदा होने लगे, ऊंच-नीच बढ़ने लगी। कुछ ही दशकों में आपसी संघर्ष की नींव तैयार हो गयी। आपसी संघर्ष बढ़ा और पालों के बीच छोटे-छोटे युद्ध होने लगे। इन्होंने अपने शोषकों के खिलाफ संथाल 'हूल', बिरसा 'उलगुलान' और 'भूमकाल' आदि जैसे विद्रोह नहीं किये बल्कि वे आपस में लड़ते रहे और राजपूतों को पनपने का अवसर देते रहे। कालांतर में कुछ पालों को राजपूतों का संरक्षण प्राप्त हो गया, क्योंकि वे उनको अपने हक में इस्तेमाल करने लगे थे। उनका अपनी सेनाओं में भर्ती कर दूसरे राजपूत राजाओं और फिर मुगलों के खिलाफ लड़वाते रहे। भील आदिवासियों को महाराणा प्रताप ने अपने पक्ष में कर युद्ध किये। इसे देखकर मुगलों ने इस ओर अधिक ध्यान दिया हालांकि मुस्लिम शासकों ने यह कार्य 12वीं-13वीं सदी में ही शुरू कर दिया था। उन्होंने मेवात क्षेत्र के मीणाओं को सेना में भर्ती किया। तब के ये 'मेवासी मीणा' अब 'मेव' कहलाते है। दोसा, खोह, लालसोट, मांची, नहाण आदि छोटे-छोटे मीणा राज्यों को राजपूतों ने लूट लिया। धोलाराय नामक ग्वालियर के हिन्दू राजा ने 10वीं सदी में मीणाओं को हराकर या धोखा देकर हिन्दू बनाना आरंभ किया। इसी तरह कुतुबुद्दीन ऐबक व इल्तुतमिश ने 11वीं सदी में दिल्ली की तरफ के मीणाओं को मुसलमान बनाया। उथल-पुथल के इस दौर में ही मीणाओं ने आजीविका के लिए लूटपाट को अपना पेशा बनाया। यह अंग्रेजी काल तक चलता रहा। इस

लूटपाट में कुछ राजपूत और अन्य गरीब भी शामिल होने लगे। ये मिश्रित दल बाद में पिंडारी कहे जाने लगे। जिन मीणा पालों को राजपूतों या ब्राहमण धर्म मुगलों या इस्लाम धर्म का संरक्षण मिला वे बाद में उनके सहयोग से कुछ शक्तिशाली बनी और बाकि मीणा पालें कमजोर होती चली गयी। वे आजकल इन क्षेत्रों में दलित के रूप में जानी जाती है। इन पर अब जमींदार चौकीदार मीणा व मेव मीणा शासन कर रहे हैं। इनका शोषण कर रहे हैं।

आज जिन्हें हम राजस्थान के मीणा आदिवासियों के रूप में जानते हैं, वे जमींदार-चौकीदार पाल के मीणा है। अब इसके भी दो भाग हो चुके है। जातीय श्रेष्ठता का अभिमान इतना बढ़ा कि एक ही पाल के दो हिस्से हो गये। एक जमींदार वर्ग, दूसरा चौकीदार। जमींदार मीणा चौकीदार मीणा को हीन समझते हैं जबकि चौकीदार मीणा जमींदार मीणा को। दोनों अपने को श्रेष्ठ हिन्दू और 'शुद्ध' मीणा साबित करने की होड़ में लगे रहते हैं। कुछ गरीब मजबूरों या पढ़े-लिखे समझदारों को छोड़ दें तो इनके बीच शादी-विवाह के संबंध नहीं होते हैं। जबकि पहले मेवासी मीणाओं व दूसरे मीणाओं में विवाह संबंध होते थे। टोडरमल मेव के पुत्र दरिया खां और बादराव मीणा की बेटी शशिवदनी की शादी के किस्से अब तक मेवात क्षेत्र के लोक गीतों में रचे बसे हैं। शादी और तलाक की आजादी रही है। महिलाएं आजाद थी। उन्हें बराबरी का हक व सम्मान मिलता था। वे संथाल, गौंड, मुंडा, भील अन्य आदिवासी महिलाओं की तरह पर्दे व परकोटे में बंद नहीं थीं। उसे अपने समाज के पुरुषों के साथ उठने-बैठने व अपने पति या प्रेमी के साथ नाचने-गाने की मनाही नहीं थी। यहां तक कि वह अपने पति या प्रेमी के साथ शराब भी पी सकती थी। एक मीणा लोक गीत में वह गाती हैः-

'धोली-धोली बोतल दुबारा की दारू,
पीवांला रे बड़ की छाया में।
कैद भलांई म्हांकी जाज्यो...।।'

इस लोक गीत में बढ़ते सामंती प्रभाव की झलक भी मिल रही है। राजपूतों या हिन्दू धर्म प्रभाव के बाद तो मीणा आदिवासियों ने अपनी महिलाओं को चहार दीवारी में कैद ही कर दिया। उसे सती किया जाने लगा। एक लोक गीत के अनुसार किसी जोधा मीणा की पत्नी फूलकी अपने पति जोधा के मरने पर उसकी चिता के साथ हो जाती है और मीणा आदिवासी राजपूती प्रभाव में उसकी वाही-वाही करते हैः-

बात बीती परी, हरि रा हाथ री, किणी रौ दूनी में जोर कांही।
फूलकी नांव री उणे री भारज्या, घिनोघिन सती हुई इल्ला मांही।।
पीर में फूलकी सासरे फूलकी, सुरग में फूलकी फूल बाई।
कपड़ा पति रा आवतां जेज ही, काठ चढ़तां करी नह जेज कांई।।'

यहीं से शुरूआत हुयी महिलाओं को पुरुष के 'पैर की जूती' समझने की। इसी दौर में मीणा समाज में दहेज प्रथा का चलन शुरू हुआ जो अब एक विकराल समस्या का रूप ग्रहण कर चुका है।

अंग्रेज आये और उन्होंने हिन्दू राजाओं और मुगलों को हराकर अपने अधीन किया। जब राजपूत, मराठे और मुगल अंग्रेजों के अधीन हो गये तब इनके आपसी दांवपेच खत्म हो गये। अब कुछ मीणाओं को मिलने वाला राजपूतों व मुगलों का रणनीतिक संरक्षण बंद हो गया। कुछ मीणा स्थानीय ठाकुरों की सेवा चाकरी में लग गये। इन वफादार मीणाओं को ठाकुरों ने जमीनें दे दी और ये जमींदारी करने लगे। कुछ मीणा छोटी-छोटी जोतों पर खेती करने लगे बाकी या तो जमींदार मीणाओं और ठाकुरों की सेवा करने लगे या फिर चोरी और लूटपाट में शामिल हो गये। इस क्षेत्र में अंग्रेजों के लिए अब मीणाओं और पिंडारियों की लूटपाट ही एक मात्र समस्या रह गयी थी। यहां अन्य आदिवासियों के समान 'भूमकाल' था 'उलगुलान' की कोशिशें बिलकुल नहीं हो रही थीं। असंतुष्ट राजपूत भी मीणाओं और पिंडरियों को भीतर-भीतर उकसा रहे थे। तब लार्ड हेस्टिंग्स व विलियम बेटिंग ने इस समस्या से निपटने के लिए कई प्रकार के प्रलोभन और दंडों का प्रावधान किया। प्रलोभन के रूप में मीणाओं को सेना में भर्ती किया जाने लगा। राजपूतों के वफादार सेनाओं में भर्ती होने लगे। दंड के प्रावधान के रूप में सजा देने के लिए एक अलग 'ठगों और डाकुओं के दमन का विभाग' गठित किया गया। 1857 के सिपाही विद्रोह में देवली, बूंदी व टोंक क्षेत्र में मीणाओं ने राजपूतों व अन्य अंग्रेज विरोधियों का साथ दिया तब अंग्रेजों ने मीणा सैनिकों को मीणाओं, असंतुष्टों और कुछ बागी मीणा सैनिकों के खिलाफ इस्तेमाल किया। 1857 के बाद मीणा सैनिकों की अधिक भर्ती की जाने लगी। मीणाओं की लूटपाट और बागियों को इनके समर्थन के चलते सरकार ने इनको 'सामान्य अपराधी जाति' घोषित कर दिया। अंग्रेज पॉलिटिक एजेन्ट मेजर इम्पे ने 1863 ई. में आदेश दिया कि सभी चौकीदार मीणा पुलिस की निगरानी में रहे। इसके बाद तो 1871 में 'जनजाति अपराध कानून' ही बना दिया गया। इसके तहत मीणा आदिवासियों को भयानक यातनाएं दी गयीं। उन्हें बिना कारण जैलों में बंद रखा गया, उनसे बेगार करवायी गयी और डरा धमकाकर उनकी महिलाओं का बलात्कार किया गया। मीणा आदिवासियों के इतिहास में यह भयानक त्रासदियों का दौर था। लम्बे संघर्ष के बाद सन् 1952 में यह काला कानून समाप्त किया गया।

मीणा आदिवासियों ने राजपूतों या महाजनों के खिलाफ कभी कोई बड़ा विद्रोह या आंदोलन नहीं किया, बल्कि उनके साथ समझौते किये। जो स्वाभिमानी आदिवासी ऐसा नहीं करना चाहते वे कमजोर होने के चलते, केवल लूटपाट या चोरी ही कर सके। मीणा लगातार हिन्दू बनते

गये और अपना स्वामिभान, सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों को खोते चले गये। 'अपराधी जनजाति अधिनियम' नामक काले कानून के आधार पर जब पुलिस-प्रशासन ने इन पर भारी कहर ढाया तब पहली बार इनमें सुगबुगाहट हुयी। इनके संघर्ष की शुरूआत यहीं से होती है। यह संघर्ष सशस्त्र आंदोलनों व विद्रोहों की बजाय सीधे अर्जी-दरख्वास्त व डेलिगेशन की पद्यति से शुरू होता है। इस काले कानून के विरोध के लिए सन् 1924 में 'मीणा जाति सुधार कमेटी' बनी। इसके सदस्य थे श्री छोटूराम झरवाल, महादेवराम पबड़ी, जवाहरराम माणोताल आदि। इसी प्रक्रिया में सन् 1942 में दलित सूरजभान बैरवा ने दिल्ली में 'अखिल भारतीय मीणा क्षत्रिय महासभा' का गठन किया। सूरजभान बैरवा ने इस काले कानून व मीणाओं की दशा को पहली राष्ट्रीय स्तर पर रखा। यह बात उन मीणाओं को जाननी चाहिए जो गांवों में दलितों के साथ छुआछूत बरत रहे हैं। उन पर कई प्रकार के अत्याचार कर उनको शहरों में पलायन करने को मजबूर कर रहे हैं। सन् 1942 के बाद तो मीणाओं ने कई संगठन बनाये और कई सभाएं कीं। इससे समाज में राजनैतिक चेतना बढ़ी। इनके परिणामस्वरूप सन् 1952 में 'अपराधी जनजाति अधिनियम' कानून खत्म हुआ और 1954 में मीणाओं को संविधान के अनुसार सरकारी सेवाओं में आरक्षण की सुविधा प्रदान की गयी। कप्तान छुट्टन लाल मीणा व श्री झूंथालाल नांढ़ला ने इसके लिए बहुत संघर्ष किया था। यहां एक बात और देखने वाली है। इन संगठनों और नेताओं ने सुरक्षा और सुविधाओं की मांग तो हमेशा की लेकिन स्वायत्त शासन और हकों-अधिकारों की मांग पुरजोर ढंग से कभी नहीं उठायी। जबकि दूसरी तरफ झारखंड में, 'छोटानागपुर उन्नति समाज' और 'आदिवासी महासभा' आदि संगठनों ने अपने गठन-सन् 1924- से ही स्वायत्त शासन और अलग प्रांत झारखंड की मांग रख दी थी। सरकारी नौकरियों में आरक्षण जैसी छोटी सी सुविधा उनके संघर्ष का हिस्सा कभी नहीं रही। राजनैतिक रूप से वे आज अन्य आदिवासियों से कई गुना अधिक ताकतवर है। उन्होंने बड़े जनाधार वाली अपनी राजनैतिक पार्टी खड़ी की, अलग प्रांत झारखंड बनवा लिया और सत्ता अपने हाथों में ले ली। मीणा आदिवासी आरक्षण जैसी सुविधा को बचाये रखने और इसे लागू करवाने से अधिक अब तक नहीं सोच सके हैं। इससे अधिक की इन्हें न समझ है, न चिंता और न साहस। इसका कारण यह है कि इस समाज के अधिकांश जन-प्रतिनिधि धनवान, सेवानिवृत अधिकारी हैं जिन्होंने आरक्षण और नौकरी-पदोन्नती से अधिक कुछ सीखा-समझा ही नहीं और इनकी जान हमेशा सरकारी फाइलों में अटकी रही है जो कि सरकार के हाथों में होती है, इसलिए ये कभी साहसी भी नहीं हो सके हैं। इन्होंने क्षेत्र में आदिवासियों के जनवादी और जुझारू नेतृत्व को कभी पनपने नहीं दिया। इसका खामियाजा समाज भुगत रहा है। अपनी समस्याओं के निपटान के लिए गरीब मीणा आदिवासी पराश्रित हैं।

देशभर में आज जो मीणा अधिकारी प्रसिद्ध हैं ये उसी पूर्वी राजस्थान के ढूढ़ाड़ क्षेत्र में निवास कर रहे हैं जहां 10वीं सदी से पहले मीणा राजाओं के छोटे-छोटे राज्य हुआ करते थे। यह क्षेत्र आज के सवाई माधोपुर, करौली, दौसा, जयपुर, टोंक, बूंदी और कोटा जिलों में आता है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि इन राज्यों को राजपूतों ने छल-बल से छीन लिया और मीणाओं आदिवासी के रूप में बचा सके, जिनके एक छोटे से हिस्से को राजपूतों ने जमीनें दीं और अपने दलाल जमींदार तैयार किये। आजादी के बाद जब काला कानून समाप्त हुआ और मीणाओं को आरक्षण प्राप्त हुआ, तब इन मीणा आदिवासियों में एक बार फिर आत्म विश्वास का संचार हुआ। सामाजिक सुधारों के प्रयासों के फलस्वरूप इन्होंने चोरी-लूटपाट बंद की, शराब बंदी की और शिक्षा की ओर ध्यान दिया। जिन गांवों में राजनीतिक-सामाजिक चेतना का काम चला था उन गांवों में संपन्न या जमींदार थे उन्होंने अपनी संतानों को पढ़ाया। मीणा आदिवासी पहले दो दशकों तक छोटी-मोटी सरकारी नौकरियां करते रहे, पर अपनी अगली पीढ़ी को बड़ी सरकारी सेवाओं का सपना दिखाया। ऐसा हुआ भी। जमींदार परिवारों और सरकारी सेवक के परिवारों से संबंध रखने वाले युवा बड़े अधिकारी बनकर देश भर में छा गये। एक दशक में इन्होंने सरकारों और मुख्यधारा के पढ़े-लिखे समाज में अपनी मेहनत और सेवा के बल पर जगह बना ली। लेकिन यदा-कदा यहां होने वाले भेदभाव ने इनके मन में असुरक्षा और स्वार्थ की भावना को भी जन्म दे दिया। इन अधिकारियों ने भारी धन कमाया और बदले में सरकारों-नेताओं की हर प्रकार से सेवा की। सरकारों के पक्ष में कई साहसी काम कर मैडल प्राप्त किये और समाज को राष्ट्रीय पहचान भी दी। समाज के इन अधिकारियों को ताकतवर होते देख दूसरे मीणा युवकों का भी उत्साह बढ़ा और गरीबी के बावजूद कई युवकों ने मेहनत कर बड़ी सरकारी सेवाएं प्राप्त की। लेकिन ऐसा अपवाद स्वरूप ही हुआ। बहुतायत में यही हुआ कि जो जमींदार थे उनकी पीढ़ियां तो ताकतवर होती गयी जबकि दूसरे मीणा गरीब और कमजोर ही रह गये। जो पढ़-लिख गये, सरकारी सेवाओं में गये; वे इतने 'सेल्फ सेन्टर्ड' हो गये कि बाकी समाज का क्या हाल है, उन्होंने सोचना ही बंद कर दिया। न केवल सोचना बंद कर दिया, बल्कि मुख्यधारा के जमींदारों-महाजनों व पुलिस की तरह अपने समाज का ही शोषण करना शुरू कर दिया। अपनी पहली ब्याहताओं पर अत्याचार किये। उन्हें दर-दर की ठोकरें खाने के लिए त्याग दिया। उनसे उत्पन्न पहली संतानों की उपेक्षा की और उन पर अत्याचार भी किये। शहरों में दूसरी-तीसरी शादियां की,

रखैले रखीं। राजस्थान के प्रसिद्ध कहानीकार चरण सिंह 'पथिक' की कहानी 'बख्खड' इसी त्रासदी को अपना विषय बनाती है। इन अधिकारियों ने गरीब मीणाओं की जमीनें खरीदी और अपने पुरखों की जमींदारी को बढ़ाया। इसके लिए उन्होंने गरीब मीणाओं को कई तरह से फंसाया और डराया-धमकाया। इन पंक्तियों के लेखक ने अपनी कहानी 'बलेड़ा' और 'कोमरेड मीणा' में इस सच को सामने लाने का यथासंभव प्रयास किया है। पद की धौंस और धन की ताकत से इन अधिकारियों की संतानों और रिश्तेदारों ने गांवों में अपराधों व गुंडागर्दी को बढ़ावा दिया। गरीब घरों की महिलाओं व लड़कियों को अपनी हवस का शिकार बनाया, पर किसी थाने में कोई रिपोर्ट दर्ज नहीं हुयी। राजनीतिक पार्टियों के टिकट खरीदे जाने लगे हैं। इन्होंने जनता के बीच के सभी कार्यकर्ताओं को भ्रष्ट बना दिया है या डरा-धमकाकर घर बैठा दिया गया है। वोट या तो खरीदे जा रहे हैं या छीने जा रहे हैं। चुनाव जीतने के बाद दलालों के माध्यम से पैसा लेकर काम करना अब इन आदिवासियों में भी आम बात है। जो पैसे वाले हैं, संपन्न हैं, उन्हीं युवकों को अब नौकरियां मिल रही है बाकी युवक समय गुजार रहे हैं।

आदिवासी समाज से होने के नाते इन अधिकारियों को सरकार ने नियमानुसार अन्य आदिवासी इलाकों में नियुक्त किया। इस उम्मीद के साथ कि आदिवासी होने के नाते ये दूसरे आदिवासियों के हालात समझेंगे और उनको शोषण मुक्त करेंगे, उनका विकास करेंगे। लेकिन हुआ इसका उल्टा। इन्होंने उन प्रदेशों की गैर-आदिवासी सरकारों और व्यवसायियों की तो खूब सेवा की और अच्छे अधिकारी होने के तमगे प्राप्त किये लेकिन वहां के आदिवासियों को शोषण मुक्त नहीं कराया। उनके लिए आने वाली योजनाओं से जयपुर-दिल्ली में अपनी कोठियां खड़ी की। उपन्यासकार हबीब कैफी ने अपने उपन्यास 'गमना' में इस सच को सामने रखा है। अधिकारियों का यह संपन्न वर्ग समाज की बेहतरी का दावा भी करता है। महानगरों में कुछ संगठन इन्होंने बना रखे है। इन संगठनों के खर्चे के लिए आम मीणा से भी चंदा उगाही की जाती है। यह इतनी हो जाती है शायद कि सालाना जलसे के बाद भी कुछ बच जाये। सालाना जलसे में बड़े अफसरों और मंत्रियों-जन प्रतिनिधियों को सम्मानित किया जाता है, फिर चारणो-भाटों की तर्ज पर लोक गायकों द्वारा उनकी प्रशंसा में लोकगीत गवाये जाते है। जलसे के अंत तक यह साबित हो जाता है कि जलसा आम आदमी के पैसे से अफसरों द्वारा मंत्रियों की खुशामद का उपक्रम है। यह उपक्रम इसलिए किया जाता है ताकि पदोन्नती और सेवानिवृत्ति के बाद राजनीतिक पुर्नियुक्ति का काम आसानी से संपन्न हो सके। समाज सेवा का तमगा 'बादू प्रॉडक्ट' होता है। इन जलसों में या तो किसी समस्या का जिक्र ही नहीं होता या फिर ले देकर आरक्षण को बचाये रखने की एक मात्र समस्या का। इन जलसों को देखकर ऐसा लगता है जैसे मीणा आदिवासियों का समाज दुनिया का सबसे सुखी और संपन्न समाज है। लेकिन ऐसा है नहीं। आदिवासियों के इस उच्च मध्यवर्गीय तबके ने समाज के सामाजिक ताने-बाने को भ्रष्ट कर दिया है। भारी दहेज, भारी भात-जामणों और अत्यंत खर्चीले मृत्युभोजों का प्रदर्शन कर इन्होंने पुरान सामंती मूल्यों को न केवल पुनर्स्थापित किया बल्कि अमीरी-गरीबी की खाई को अधिक चौड़ा कर दिया। युवाओं को अच्छा जन प्रतिनिधि, तरह जमींदार बनने और फिर आदिवासी हितों की विरोधी पार्टियों के एजेंट बनने की ही सीख दी जा रही है। यही वज़ह है कि मीणा युवक-युवतियां उन नये क्षेत्रों से लगभग अछूते है जो नव उदारवादी नीतियों के फलस्वरूप पनपे हैं और जिन में मुख्यधारा के समाज के युवा अपना स्वर्णिम भविष्य बना रहे हैं। समाज में महिलाओं का सम्मान व स्वाभिमान कम हुआ है। इसके बदले उन्हें चमक-दमक के महंगे उपकरण-जैसे- महंगे कपड़े, बहुत महंगे गहनें, घूमने के लिए महंगी गाड़ियां और खर्चे के लिए क्रेडिट कार्डस आदि-उपलब्ध करवा दिये गये है। मीणा आदिवासियों का यह वही छोटा सा तबका है जिसका प्रचार कर गुर्जर नेता कर्नल किरोड़ी सिंह बैसला ने बहु चर्चित आरक्षण आंदोलन चलाया और प्रदेश की कई जातियों का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश की थी। मीणा आदिवासियों का यह छोटा सा-लगभग बीस फीसदी-तबका जिस सच को छुपा रहा था, जिसकी उपेक्षा कर अपनी गति से चल रहा था, इसके उसी मुगालते का इस्तेमाल कर्नल बैसला ने कर लिया और यह वर्ग देखता रह गया। समाज के नाम पर इस नाजुक घड़ी में गरीब आदिवासी फिर सड़कों पर आया और बिगड़ती स्थिति को संभाला। लेकिन इस संपन्न तबके ने उसे फिर धोखा दिया। श्रेय भी ले लिया और गरीब आदिवासी को उनके सच्चे जन प्रतिनिधियों के साथ फिर असहाय स्थिति में छोड़ दिया।

मीणा आदिवासियों का लगभग अस्सी फीसदी निम्न मध्यवर्गीय और गरीब है। वह या तो अपने ही बीस फीसदी संपन्न वर्ग द्वारा पीड़ित है या इनकी चुप्पी और इनके प्रश्रय के चलते क्षेत्र के गैर-मीणा शोषकों-महाजनों, कारोबारियों व अन्य दबंग जातियों- के द्वारा पीड़ित हैं। ये कर्ज में डूबे हुए हैं और लगभग आत्महत्या के कगार पर हैं। उनके पास अच्छा घर नहीं है, बच्चों की शिक्षा, दवाई व खेती के लिए बीज व अन्य उपकरणों का घोर अभाव है। उनकी बेटियां होनहार है, पर वे उनको पढ़ा नहीं पा रहे हैं क्योंकि एक तो बेटों को ही नहीं पढ़ा पा रहे हैं, दूसरी बात, वे जानते हैं कि बेटी को एम.फिल/पी-एच.डी. तक पढ़ाने और काबिल बनाने के बाद भी उन्हें शादी में कम से कम पन्द्रह-बीस लाख का दहेज तो देना ही होगा, जो इनके पास है नहीं। मीणा आदिवासियों का यह वह सच है जिसका प्रतिनिधित्व इनका धन

संपन्न, अधिकार संपन्न छोटा तबका नहीं करना चाहता है। इस का प्रतिनिधि कोई नहीं है क्योंकि नेता और मंत्री तो यही वर्ग बन रहा है जो पहले से ही इसकी उपेक्षा करता आ रहा है। दुर्भाग्य से मीणा समाज के पास अभी अच्छे सामाजिक कार्यकर्ता और बुद्धिजीवी भी नहीं हैं। ऐसा संस्कार अभी यहां बना नहीं है। जिन के हिस्से जिम्मेदारियां आयी हैं वे भी सत्तासीनों के दलाल बनकर अपने स्वार्थो की पूर्ति करने में लगे हैं। इसी खाते-पीते वर्ग से एक बड़े लेखक है हरीराम मीणा। वे अकेले एक बौद्धिक माहौल बनाने का प्रयास कर रहे हैं। ऐसा बौद्धिक माहौल अब मीणा आदिवासियों की पहली जरूरत बन गया है।

❑❑
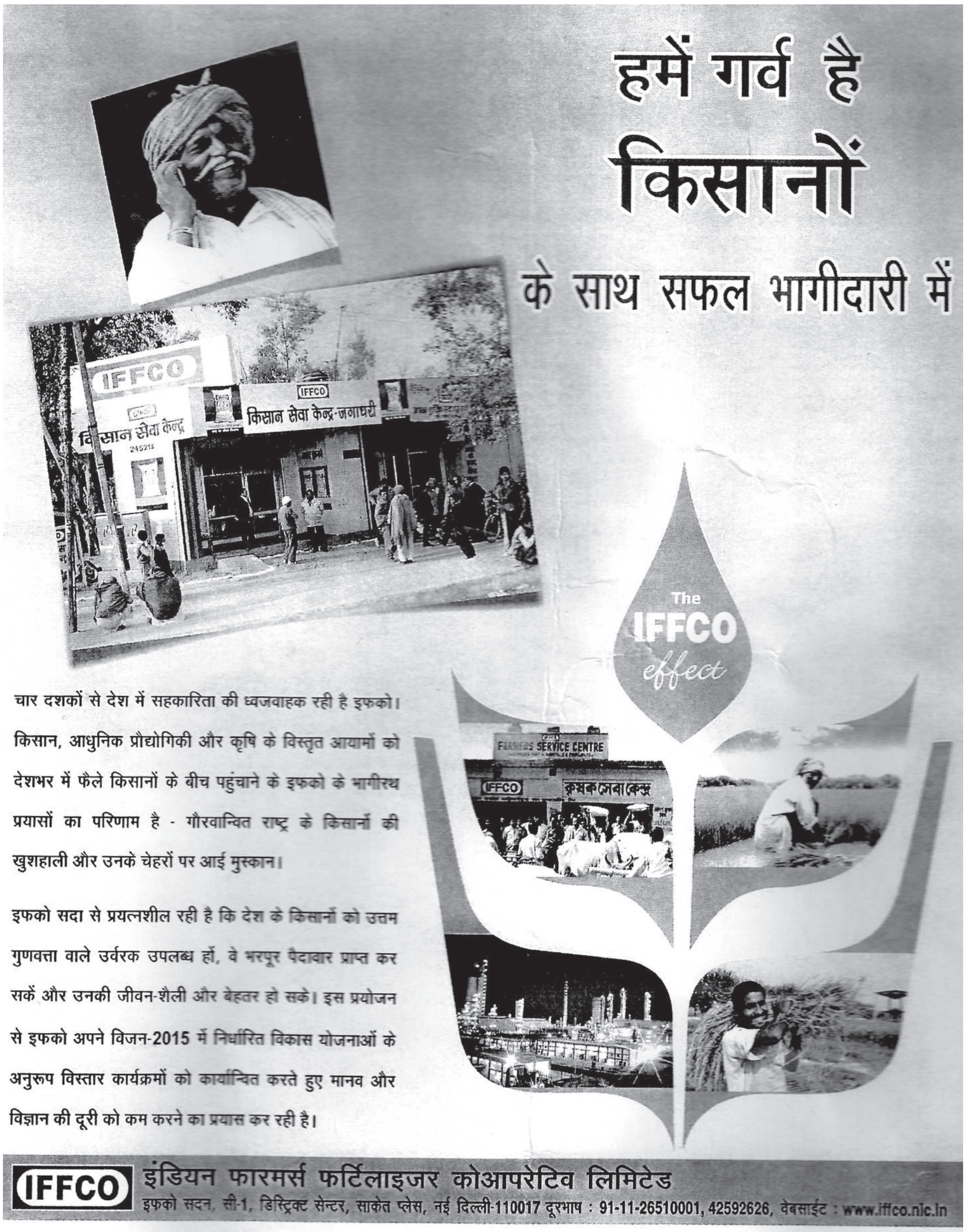
सहा. प्रोफेसर, हिन्दी
शहीद भगत सिंह कॉलेज (प्रातः)
दिल्ली विश्वविद्यालय
नई दिल्ली- 110017